THE HINDU

Date: 30-05-26

Concrete fever

India must mandate green cover and reflective materials for its cities

Editorial

Sri Ganganagar, in Rajasthan touched 48° Celsius this week, the hottest that India has been this year so far. Scorching summer heat in the run-up to the monsoon, which is delayed, is not unusual, but many Indians in the informal sector have to work directly under the sun in unprotected environments. Climate change is inextricably linked to heatwaves. India Meteorological Department data show that the frequency of heatwave spells has risen by 0.1 days per decade since 1961 over India's Core Heatwave Zone that includes the central, northwestern, and eastern coastal regions, or about 30% of India's total land area. Their maximum duration has increased by 0.55 days per decade; and the 2015-25 interval is, according to the World Meteorological Organization, the warmest 11-year stretch since records began. But the emissions that produced these numbers are only the proximate villain. What makes India's heat uniquely lethal is not the atmosphere alone. Urban heat islands across Indian cities now run 2°C to 10°C hotter than their surrounding rural areas, the difference manufactured by concrete, asphalt, the butchering of tree cover, and the waste heat exhaled by the thousands of air-conditioners cooling offices. Delhi's average humidity rose by eight percentage points between 2015-19 and 2020-24. This has a lot to do with an increasingly sealed urban surface than global warming alone. This is where the seduction of the technological fix becomes dangerous with the instinct being to reach for more, better and cheaper ACs. This might shield the privileged office worker at the expense of the vast majority, many of whom are outdoor workers and street vendors. Paradoxically, the machines are, in a thermodynamic sense, fuelling the problem.

What is called for instead is unglamorous, slow and politically difficult: urban design that mandates reflective materials and green cover, building codes calibrated to a climate that has already shifted; and, most urgently, the enforcement of labour laws that already exist but are honoured largely in the breach. These laws require employers to stop outdoor work when the heat index crosses thresholds that human physiology cannot safely absorb. India has not yet had a serious national conversation about budget heads for heat management.

Date: 30-05-26

Different directions

The Quad is unable to push toward its worthy objectives

Editorial

The Quad Foreign Ministers' Meeting this week, the third such engagement since U.S. President Donald Trump began his tenure, was meant to reassure all partners — India, Australia, Japan and the U.S. — that the grouping remains valid and viable, despite all the rapid geopolitical developments. To that end, U.S. Secretary of State Marco Rubio, Australian Foreign Affairs Minister Penny Wong and Japanese Foreign Affairs Minister Toshimitsu Motegi, who were hosted by External Affairs Minister S. Jaishankar in Delhi, agreed to firm up a number of initiatives. On Indo-Pacific maritime security, they agreed on three initiatives including one for Maritime Surveillance Collaboration (IPMSC), a Partnership for Maritime Domain Awareness (IPMDA), and a Quad-at-Sea Ship Observer Mission. They also finalised a Quad Critical Mineral cooperation initiative, an energy security partnership, and the first ever Quad infrastructural project to build a port in Fiji. The joint statement reiterated their commitment to the Quad's geopolitical positions: a Free and Open Indo-Pacific (FOIP); respecting territorial integrity; countering cross-border terrorism; and upholding international law with a focus on UNCLOS. The statement expressed concern over the Pahalgam attack, developments in the East and South China Seas, and the Strait of Hormuz blockade. Yet, there were also clear constraints on the language, which appeared to arise out of the U.S.'s new engagement with China and Russia. Quad partners decried Iranian actions in the conflict but made no mention of the U.S.-Israel's initiation of the conflict with Iran, the U.S. torpedoing of an Iranian ship in the Indian Ocean, or Washington's talks with Tehran using Pakistan as mediator. Each of these newly developed vectors poses a challenge to Quad unity, while the lack of consultation before and during the West Asia conflict raises questions about the Quad's relevance.

The future of the Quad engagement emerged as another concern. The Quad began at an official-level in 2007, was reborn in 2017 at a higher official level, and was upgraded to leader-level engagement in 2021. India assumed the Quad chair in 2024, but has since faced difficulties in hosting the summit. In 2024, tensions with the U.S. over the Pannun-Nijjar case delayed the summit and the Biden administration insisted on holding it in Baltimore. In 2025, tensions over tariffs, sanctions, trade, and Operation Sindoor claims disrupted plans for Mr. Trump and other leaders to meet in Delhi. Mid-way through 2026, that meeting is yet to be scheduled, and if India demits the Chair to Australia without holding a Summit, it may indicate a downgrade in engagement. The Quad's regional initiatives on climate change, health, debt financing, infrastructure and maritime security remain a force for good in the Indo-Pacific. However, the grouping's internal contradictions, particularly in the face of the U.S.'s unilateral moves across the world, are a challenge. The Quad could benefit from some reflection on how to ensure that the grouping moves forward in tandem on its worthy objectives, not as one that pulls in different directions.

दैनिक जागरण

Date: 30-05-26

आतंकवाद मामलों में जमानत नियम नहीं, अपवाद हो।

अशोक कुमार, (लेखक उत्तराखंड के डीजीपी रहे हैं)

हाल में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि "जमानत नियम है, जेल अपवाद" और यहां तक कि यूएपीए यानी गैर गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम में भी। इसके बाद इस पर बहस शुरू हो गई। इसमें संदेह नहीं कि व्यक्तिगत आज़ादी संविधान की बहुत बड़ी ताकत है, पर आतंकवाद और राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े मामलों में इस सिद्धांत को सीधे-सीधे लागू करना खतरनाक हो सकता है। पुलिस, खुफिया तंत्र, आतंक-रोधी अभियानों और आंतरिक सुरक्षा के क्षेत्र में काम करने के अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि इस मुद्दे को सिर्फ "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" के दृष्टिकोण से नहीं देखा जा सकता। यहां प्रश्न देश की सुरक्षा और राष्ट्रीय हित का है।

आतंकी हमला साधारण आपराधिक घटना नहीं होता। आतंकी स्लीपर सेल, ओवरग्राउंड वर्कर्स, सीमा-पार हैंडलर्स, गुप्त फंडिंग और गोपनीय संचार तंत्र के माध्यम से काम करते हैं। ऐसे नेटवर्क को पकड़ना और खत्म करना मुश्किल होता है। खुफिया एजेंसियों और पुलिस के अधिकारियों को कई बार तो वर्षों तक लगातार निगरानी करनी पड़ती है, तब जाकर किसी आतंकी माड्यूल का पर्दाफाश हो पाता है। आम लोग यह नहीं समझ सकते कि एक आतंकी तक पहुंचने में कितनी मेहनत लगती है। अधिकारी दिन-रात काम कर जान जोखिम में डालते हैं। बड़ी मुश्किल से पकड़े गए आतंकियों को आसानी से जमानत मिलना सुरक्षा एजेंसियों के मनोबल और राष्ट्रीय सुरक्षा, दोनों को कमजोर करता है। जमानत पर बाहर आने के बाद आतंक के आरोपित फिर से अपने नेटवर्क को सक्रिय कर सकते हैं, सबूत मिटा सकते हैं, गवाहों को प्रभावित कर सकते हैं या फरार हो सकते हैं। आतंक से जुड़े मामलों में स्लीपर सेल दोबारा सक्रिय होने का खतरा हमेशा बना रहता है। आम अपराधियों से हटकर आतंकी कट्टर विचारधारा से प्रेरित होते हैं और संगठित नेटवर्क के इशारों पर काम करते हैं, जिनकी पहुंच सीमाओं के पार तक होती है।

अगर जमानत पर छूटा एक भी आतंकी दोबारा हमला करने में सफल हो गया तो उसका परिणाम भयावह हो सकता है। निर्दोष लोगों के साथ सुरक्षा बल भी निशाना बन सकते हैं। देश की संपत्ति और सामाजिक सौहार्द की भी क्षति हो सकती है। ऐसे मामलों में राज्य सिर्फ आरोपित के अधिकारों की बात करके आम नागरिकों की सुरक्षा की अनदेखी नहीं कर सकता। मानवाधिकार सिर्फ आतंक के आरोपितों के नहीं, निर्दोष नागरिकों के होते हैं। आजकल कुछ लोग यूएपीए मामलों को सिर्फ "लंबी जेल" के दृष्टिकोण से देखने लगे हैं। वे राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरों को उतनी गंभीरता से नहीं देखते। निःसंदेह मुकदमों में देरी चिंता का विषय है और न्यायिक सुधार जरूरी हैं, पर इसका मतलब यह नहीं कि आतंक से जुड़े मामलों में जमानत को नियम बना दिया जाए। हाल में सुप्रीम कोर्ट ने यूएपीए के मामले में एक आरोपित को जमानत देते हुए कहा कि मुकदमे में ज्यादा देरी जमानत का आधार हो सकती है और फिर दोहराया- "जमानत नियम है और जेल अपवाद।" कोर्ट ने संविधान के अनुच्छेद 21 का भी जिक्र किया। लोकतंत्र में संवैधानिक अधिकार बेहद जरूरी हैं, पर राष्ट्रीय सुरक्षा भी उतनी ही बड़ी संवैधानिक जिम्मेदारी है।

आतंक के मामलों में जमानत नियम नहीं, बल्कि अपवाद होनी चाहिए। हां, जहां सबूत कमजोर हों, मामला दुर्भावना से दर्ज किया गया हो या कोई असाधारण मानवीय परिस्थिति हो, वहां अदालतों को राहत देने का अधिकार जरूर होना चाहिए, लेकिन अगर यूएपीए मामलों में जमानत को सामान्य सिद्धांत बना दिया गया, तो इससे गलत संदेश जाएगा और आतंक के खिलाफ लड़ाई कमजोर पड़ सकती है। इससे भारत की वही पुरानी छवि बन सकती है कि वह आतंक के प्रति "साफ्ट स्टेट" है, जबकि पिछले दशक में देश ने इस छवि से बाहर निकलने की गंभीर कोशिश की है। आतंकवाद से जुड़ी जांच बहुत जटिल होती है। विदेशी एजेंसियों से तालमेल, फोरेंसिक जांच, एन्क्रिप्टेड मैसेज डिकोड करना और पैसों के लेन-देन को ट्रैक करना अत्यधिक कठिन होता है। इसमें समय लगता है। हर देरी को एजेंसियों की असफलता नहीं कहा जा सकता। कई बार मामलों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि जांच लंबी चलती है। मैंने कई ऐसे अपराधियों को देखा है जो जमानत मिलने के बाद फिर से अपराध में शामिल हो गए। हत्या और दुष्कर्म जैसे मामलों में कई आरोपित जमानत पर बाहर आकर गवाहों को धमकाने या खत्म करने की कोशिश करते हैं। ऐसे में राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े मामलों को तो सामान्य आपराधिक मामलों की तरह नहीं ही देखा जा सकता।

यूएपीए कानून इसलिए बनाया गया है, क्योंकि आतंकवाद देश की संप्रभुता और अखंडता के लिए सीधा खतरा है। अगर ऐसे कानूनों को उदार जमानत सिद्धांतों के जरिए कमजोर किया गया, तो सुरक्षा एजेंसियों का मनोबल टूटेगा। भारत आज भी कई गंभीर सुरक्षा चुनौतियों का सामना कर रहा है। सीमा-पार आतंकवाद, कट्टरपंथ, नार्को-टेररिज्म, साइबर भर्ती और स्लीपर सेल की सक्रियता आज भी बड़ी चिंताएं हैं। पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी आइएसआइ लगातार भारत के खिलाफ छद्म युद्ध चला रही है। ऐसे में देश ऐसी कानूनी व्याख्याओं का खतरा नहीं उठा सकता, जो राष्ट्रीय सुरक्षा को कमजोर कर दें। कोई यह नहीं कह सकता कि निर्दोष लोग अनिश्चितकाल तक जेल में रहें। जांच और सुनवाई त्वरित होनी चाहिए। विशेष अदालतों को ज्यादा प्रभावी बनाया जाए। अदालतों में खाली पद भरे जाएं और अभियोजन व्यवस्था मजबूत हो। जब तक ये सुधार पूरी तरह लागू नहीं हो जाते, तब तक राष्ट्रीय सुरक्षा के मामलों में जमानत को नियम बनाना खतरनाक होगा।

राष्ट्रीय सुरक्षा को सैद्धांतिक चर्चा के दृष्टिकोण से नहीं देखा जा सकता। एक गलत फैसला निर्दोषों की जानें ले सकता है। लोकतंत्र सिर्फ अधिकारों की वजह से नहीं चलता, बल्कि मजबूत सुरक्षा व्यवस्था की वजह से भी कायम रहता है। अगर राष्ट्रीय सुरक्षा कमजोर पड़ गई, तो लोकतंत्र की नींव भी खतरे में पड़ सकती है। भारत को लोकतांत्रिक भी रहना है और सुरक्षित भी, लेकिन जब आतंक के किसी आरोपी के अधिकारों और आम नागरिकों की सुरक्षा के बीच चुनाव करना पड़े, तो हमेशा राष्ट्रीय सुरक्षा को प्राथमिकता देनी होगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 30-05-26

जल संकट: तत्काल सुधार की दरकार

संपादकीय

भीषण गर्मी और लू की वजह से पूरे भारत में जल आपूर्ति की समस्या तेजी से बढ़ रही है। उत्तर भारत के कई शहरों में तापमान 40 डिग्री सेल्सियस से ऊपर बना हुआ है और रात में भी तापमान लगातार ऊंचा रहने से पानी तथा बिजली की मांग बढ़ रही है। सुपर अल नीनो के कारण बारिश में व्यवधान की आशंका से समस्या और गंभीर हो सकती है। केंद्रीय जल आयोग के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार जिन 166 जलाशयों पर नजर रखी जा रही है, उनमें 30 अप्रैल को मौजूद 71.08 अरब घन मीटर पानी 14 मई तक घटकर 63.23 अरब घन मीटर ही रह गया है। यानी सिर्फ दो हफ्तों में लगभग 8 अरब घन मीटर की गिरावट आई है। तेरह प्रमुख जलाशयों में जल स्तर अपने सामान्य भंडारण स्तर के आधे से भी कम रह गया है।

यह समस्या तब आ रही है, जब भारत में पानी का बहुत अधिक इस्तेमाल करने वाले क्षेत्रों में गतिविधियां बढ़ी हैं। इनमें एथनॉल मिश्रण, डेटा सेंटर, आर्टिफिशल इंटेलिजेंस का ढांचा और विनिर्माण शामिल हैं। इनमें से कई निवेश पानी के संकट वाले क्षेत्रों में हो रहे हैं। महाराष्ट्र और कर्नाटक बार-बार सूखे और भूजल स्तर में गिरावट की समस्या से जूझते रहे हैं मगर गन्ने की खेती और एथनॉल उत्पादन बढ़ता जा रहा है, जबकि गन्ने की खेती में पानी की सबसे ज्यादा खपत होती है। इसी तरह अक्सर शहरी जल संकट से जूझने वाले महाराष्ट्र, तमिलनाडु, तेलंगाना और कर्नाटक डेटा सेंटर के बड़े अड्डे बनते जा रहे हैं। हाइपरस्केल डेटा सेंटरों को ठंडा रखने के लिए बड़ी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। मुद्दा यह नहीं है कि इन क्षेत्रों का विस्तार होना चाहिए या नहीं, मुद्दा यह है कि औद्योगिक और ऊर्जा नीतियां जल विज्ञान संबंधी हकीकत के मुताबिक हैं या नहीं। औद्योगिक स्थलों के चयन, शहरी नियोजन और कृषि प्रोत्साहन में जल की उपलब्धता प्रमुख मानदंड होना चाहिए।

इस व्यापक संकट के परिणाम भारत के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में स्पष्ट दिख रहे हैं। उदाहरण के लिए, राजस्थान के बाड़मेर जिले में एक लिफ्ट नहर के बंद होने से कई गांव इकलौते हैंडपंप पर निर्भर हो गए हैं। दिल्ली में यमुना में पानी कम होने और प्रदूषण बढ़ने से जल शोधन क्षमता कम हो गई है, जबकि गर्मियों के महीनों में पानी की मांग बढ़ जाती है, इसलिए शहर को पड़ोसी राज्यों से मदद मांगनी पड़ रही है। वर्ष 2024 के बेंगलूरु जल संकट ने यह दिखाया कि भूजल भंडार कम होने, झीलों पर अतिक्रमण होने और वर्षा जल संचयन नियमों का ठीक से पालन न होने पर शहरी जल व्यवस्था कितनी तेजी से चरमरा सकती है। यह संकट अब केवल वर्षा की कमी तक सीमित नहीं है। तापमान बढ़ने से ज्यादा पानी भाप बनकर उड़ रहा है और भूजल स्तर गिरता जा रहा है। भारत लगभग 251 अरब घन मीटर सालाना भूजल दोहन पहले से करता आ रहा है, जो विश्व में कुल दोहन का लगभग एक चौथाई है। 1950 में यहां हर व्यक्ति के लिए लगभग 5,000 घन मीटर पानी उपलब्ध था, जो 2021 में घटकर 1,486 घन मीटर रह गई है, जिसमें और भी कमी आने का अनुमान है। ऊर्जा, पर्यावरण एवं जल परिषद के शोध से पता चलता है कि भारत के 15 प्रमुख नदी बेसिनों में से 11 गंभीर जल संकट के कगार पर हैं। जल की कमी और संकट के व्यापक आर्थिक परिणाम भी हो सकते हैं। खाद्य उत्पादन पर इसका असर पड़ा तो महंगाई तेजी से बढ़ सकती है, जिसके व्यापक नीतिगत प्रभाव हो सकते हैं।

दुर्भाग्यवश स्थानीय निकाय पेयजल संबंधी आपात स्थितियों से निपटने के लिए ठीक से तैयार नहीं हैं। तेजी से शहरीकरण होने के बाद भी अधिकतर शहरों में अभी व्यापक जल सुरक्षा योजनाएं नहीं हैं। नगरपालिकाएं भूजल दोहन, आपात स्थितियों

के दौरान टैंकरों द्वारा आपूर्ति और संकट में अस्थायी प्रतिक्रियाओं पर ज्यादा निर्भर हैं। कुछ अध्ययनों के अनुसार बिजली के पारेषण और वितरण में भी 40 प्रतिशत तक नुकसान होता है। इसलिए जरूरी है कि शहर अपने यहां जल भंडारण का ढांचा मजबूत करें, आवासीय और व्यावसायिक भवनों में वर्षा जल संचयन लागू करें, झीलों और दलदली भूमि को वापस जीवित करें, पाइपलाइन से लीकेज कम करें और अपशिष्ट जल शोधन की प्रक्रिया का विस्तार करें। भारत को अपने जल संसाधनों के प्रबंधन के लिए एक व्यापक और समग्र दीर्घकालिक योजना की आवश्यकता है।

जनसत्ता

Date: 30-05-26

शुचिता की फिक्र

संपादकीय

किसी भी परीक्षा के दौरान अगर प्रश्नपत्र लीक होता है या अन्य कोई गड़बड़ी होती है, तो इसका मतलब यही है कि उसके संचालन से जुड़ा तंत्र परीक्षा की शुचिता को सुनिश्चित कराने में नाकाम रहा। हाल ही में प्रश्नपत्र लीक होने के बाद नीट-यूजी परीक्षा को जिस तरह रद्द किया गया, उससे साफ है कि पहले हुई ऐसी कई घटनाओं के बावजूद आयोजन में हर हाल में शुचिता तय करने को लेकर राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी यानी एनटीए ने जरूरी सबक नहीं सीखा। नतीजतन, की परीक्षा के प्रश्नपत्र फिर अवैध रूप से बाहर हुए और ऊंची कीमतों पर बेचे गए। विडंबना यह है कि इस भ्रष्ट लेन-देन और इसके जरिए परीक्षा में कामयाब होने की कोशिश करने वाले कुछ लोगों की करतूतों का खमियाजा करीब बाईस लाख उन विद्यार्थियों को उठाना पड़ा, जिन्होंने ईमानदारी से अपनी मेहनत के बूते परीक्षा दी थी। ऐसे विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों की पीड़ा प्रश्नपत्र लीक करने और उसका फायदा उठाने वाले गिरोहों की हरकत के खुलासे से उपजे शोर में दब कर रह गई।

विचित्र है कि इस घटना की परतें खुलने के बाद शीर्ष स्तर पर इसकी जिम्मेदारी तय करने तथा संचालन के तंत्र में पाई गई खामी को पूरी तरह दुरुस्त करने या इस मसले पर अधिकतम सख्ती बरतने के बजाय सुरक्षित तरीके से परीक्षा कराने के लिए अब सेना का सहारा लेने की खबर आई है। यानी एक तरह से यह स्वीकार कर लिया गया है कि सरकार का मौजूदा तंत्र इस परीक्षा का स्वच्छ तरीके से संचालन कर पाने में सक्षम नहीं है और इसीलिए सेना के सहारे नीट-यूजी परीक्षा की शुचिता सुनिश्चित करने की कोशिश की जाएगी। गौरतलब है कि नीट परीक्षा का प्रश्नपत्र लीक होने से जुड़े मामले में पूरी प्रक्रिया की समीक्षा के लिए हुई बैठक में प्रश्नपत्र तैयार करने और उनकी छपाई से लेकर परिवहन, सुरक्षा और परीक्षा केंद्र तक उनकी पहुंच सुनिश्चित करने के सभी पहलुओं पर विचार किया गया। इसके बाद अब 21 जून को दोबारा होने वाली नीट परीक्षा में प्रश्नपत्रों को परीक्षा केंद्र तक पहुंचाने के लिए वायुसेना की मदद लेने पर सहमति बनी। अगर यह प्रस्ताव अमल में आता है, तो किसी राष्ट्रीय प्रवेश परीक्षा के आयोजन और संचालन में सेना के औपचारिक रूप से शामिल होने का यह पहला मौका होगा।

सवाल है कि इससे पहले नीट या अन्य परीक्षाओं में हुई गड़बड़ियों का उदाहरण सामने होने के बावजूद यह स्थिति आखिर क्यों पैदा हुई कि सरकार को परीक्षा के स्वच्छ संचालन के लिए अपने तंत्र और पुलिस पर भरोसा नहीं रहा। हालांकि खबरों के मुताबिक सेना की भूमिका केवल लॉजिस्टिक समन्वय, आपातकालीन स्थितियां पैदा होने या मौसम में तेज उतार-चढ़ाव के बीच सुरक्षित परिवहन तक सीमित रहने की बात कही गई है और परीक्षा की निगरानी सेना से नहीं कराई जाएगी। मगर यह देखने की बात होगी कि सेना की मदद का दायरा क्या होता है। आमतौर पर किसी प्राकृतिक आपदा से हुई तबाही और अन्य आपात स्थितियों में युद्ध स्तर पर बचाव कार्य आदि के लिए जरूरत पड़ने पर सरकार सेना या सशस्त्र बलों को तैनात करती रही है। यह एक अफसोसनाक स्थिति है कि आज के दौर में परीक्षाओं के संचालन के मामले में पहले के मुकाबले बेहतर संसाधनों, हर स्तर पर निगरानी की तकनीकी सुविधा और व्यापक डिजिटल तंत्र के बावजूद प्रश्नपत्र लीक होने की घटनाएं हो रही हैं और इसे रोकने के लिए सरकार के सामने सेना की मदद लेने की नौबत है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 30-05-26

परीक्षा एक जिम्मेदारी

संपादकीय

पेपर लीक के बाद नीट-यूजी रद्द करने की प्रक्रिया की निगरानी अगर स्वयं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी कर रहे हैं, तो यह बहुत सराहनीय है। सर्वोच्च न्यायालय ने पूछा था, पेपर लीक जांच किस तरह की जाएगी, जवाब में सरकार ने प्रधानमंत्री के नाम का उपयोग किया है। यदि प्रधानमंत्री स्वयं जांच की निगरानी कर रहे हैं, तो इससे दूध का दूध और पानी का पानी होने की संभावना बहुत बढ़ गई है। दरअसल, नीट पेपर लीक को लेकर बहुत नाराजगी देखी जा रही है और इसका एहसास सरकार को है। सॉलिसिटर जनरल तुषार मेहता ने जिस तरह से सरकार का पक्ष रखा है, उससे भी अंदाजा होता है कि सरकार पेपर लीक को लेकर गंभीर है। न्यायमूर्ति नरसिम्हा का यह कहना वाजिब है कि उच्च स्तरीय समिति के बावजूद अगर यह घटना हुई है, तो यहां मूल सिफारिश में कुछ गड़बड़ी है या ढंग से क्रियान्वयन नहीं हुआ है। यह खामी बहुत बड़ी है, ऐसे में, इसकी सर्वोच्च निगरानी करना स्वाभाविक है। मेडिकल प्रवेश परीक्षा अर्थात नीट के पूरे तंत्र में कमी नजर आ रही है। इस पेपर लीक के लिए कई लोग गिरफ्तार हो चुके हैं। अत: यहां उच्च स्तरीय निगरानी से ही परीक्षा तंत्र की कमियों की तह तक पहुंचा जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय की सुनवाई में अब तक यह साबित हो चुका है कि पेपर लीक की यह घटना बहुत दुखद है और इसे हल्के में नहीं लिया जा सकता। चंद लोगों ने अपने फायदे के लिए पूरे तंत्र से खिलवाड़ किया है। सबसे बड़ी बात, यह पेपर लीक का कोई पहला मामला नहीं है। पेपर लीक का एक सिलसिला है, जो टूट नहीं रहा है। तंत्र के भीतर ही ऐसे लोग बैठे हैं, जो दीमक का काम कर रहे हैं। ऐसे दीमकों का इलाज बहुत जरूरी है। सर्वोच्च न्यायालय इन दीमकों का इलाज करना चाहता है और अब उसके साथ प्रधानमंत्री का भी खड़े होना आश्वस्त करता है कि भारतीय परीक्षा व्यवस्था में चौकसी बढ़ने वाली है। सॉलिसिटर जनरल तुषार मेहता ने अदालत को बताया है कि 21 जून को होने वाली नीट-यूजी परीक्षा के लिए नया

तंत्र लागू किया गया है। इस बार किसी को शिकायत का मौका नहीं देना चाहिए। परीक्षा पर समाज का एकजुट होना भी जरूरी है। ध्यान रहे, पेपर लीक साफ तौर पर दिख रही है, लेकिन तब भी ऐसे लोग हैं, जो दागदार नीट-यूजी को रद्द करने के खिलाफ हैं। दरअसल, परीक्षा के प्रति एकजुटता का अभाव ही निष्पक्षता एवं शुचिता की हत्या कर रहा है।

यह व्यापक समीक्षा का समय है। अपने देश में परीक्षाओं का आकार बहुत बढ़ गया है। डॉक्टर बनने के लिए 22 लाख विद्यार्थी आवेदन करते हैं, तो इंजीनियर बनने के लिए 16 लाख विद्यार्थियों के बीच होड़ मचती है। अगर परीक्षा के आकार को छोटा नहीं करना है, तो उसे युद्ध स्तर पर सुधारना होगा। कोई भी परीक्षा किसी के भ्रष्ट आचरण का माध्यम नहीं बननी चाहिए। छात्रों के असंतोष को पूरी संवेदना से समझना होगा। गुरुवार को ही केंद्रीय शिक्षा मंत्री ने सीबीएसई 12वीं बोर्ड की कॉपी जांच में दिखी कमियों की जिम्मेदारी ली है। वाकई यह जिम्मेदारी लेते हुए काम करने का समय है। राजनीतिक नेतृत्व अपनी ओर से निगरानी बढ़ाए और प्रशासन अपने कामकाज से ईमानदारी सुनिश्चित करे, तभी बात बनेगी। खराब परीक्षा प्रणाली से समग्रता में देश की गुणवत्ता पर असर पड़ेगा। तैयार रहना चाहिए, शिक्षा और परीक्षा की चुनौतियां लगातार बढ़ती चली जाएंगी। कमी दिखते ही उस पर प्रहार करना होगा। अपनी मूलभूत व्यवस्थाओं में कमियों को पालने की गलती अब यह देश नहीं कर सकता।

Date: 30-05-26

बांस, भांग और केले से संभव होगी हरित फाइबर क्रांति

गिरिराज सिंह, (केंद्रीय वस्त्र मंत्री)

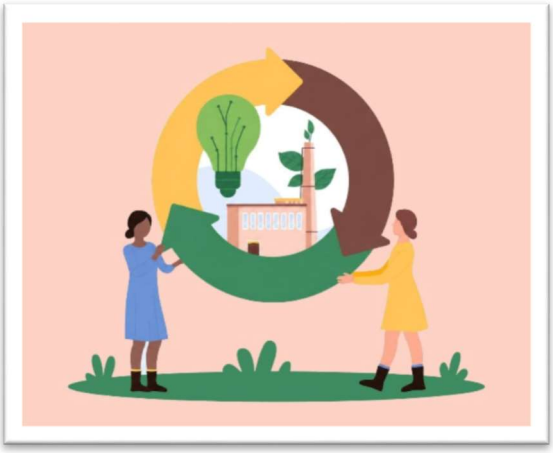

फाइबर के साथ भारत का 5,000 साल पुराना सभ्यतागत संबंध है, जो हमारे गांवों, हमारी परंपराओं और सामूहिक पहचान में गहरे गुंथा हुआ है। 'बुनी हुई हवा' कहलाने वाली मोहनजोदड़ो की प्रसिद्ध मलमल से लेकर संसार के सभी महाद्वीपों तक फैली भारतीय कारीगरी तक फाइबर हमेशा से हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की जीवनरेखा रहा है। आज, जब दुनिया क्रांतिकारी वैश्विक स्थिरता के कगार पर खड़ी है, तब यही प्राचीन ज्ञान हमारी सबसे बड़ी प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति है।

दशकों तक केले के पेड़ के तने को बेकार मानकर फेंक दिया जाता था, लेकिन आज वही बायोमास प्रीमियम फाइबर बनकर निर्यात बाजारों की मांग पूरी कर रहा है, ग्रामीण आजीविका को सशक्त बना रहा है और इस कृषि अवशेष को राष्ट्रीय आय में बदल रहा है। अपशिष्ट से समृद्धि तक, स्थानीय प्रचुरता से वैश्विक अवसर तक- यही भारत की 'न्यू एज फाइबर' मुहिम का सार है, जो हरित सामग्रियों और भविष्य के लिए तैयार वस्त्रों में भारत को वैश्विक नेतृत्व की ओर अग्रसर कर रहा है। न्यू एज फाइबर पौधा-आधारित ऐसे टिकाऊ पदार्थ हैं, जो हमारे पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक नवाचार के साथ जोड़ते हैं। बांस, भांग, केला, फ्लैक्स, रेमी, सिसल, आक-मदार व कपोक जैसे फाइबर सदियों से मौजूद रहे हैं, पर अब इन्हें वस्त्र उद्योग, रक्षा, बायोडिग्रेडेबल

कंपोजिट्स और प्रीमियम उत्पादों में महंगे उपयोगों के लिए नए सिरे से खोजा जा रहा है। ये हरित भविष्य के लिए भारत के प्राकृतिक फाइबर भंडार का विस्तार कर रहे हैं। बढ़ती आय, वैश्विक स्थिरता संबंधी अनिवार्यताएं व ट्रेसेबल सोर्सिंग की जरूरतें वैश्विक आपूर्ति शृंखलाओं को पूरी तरह बदल रही हैं और एक फाइबर अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ा रही हैं। दुनिया तेजी से वही तलाश रही है, जिसे भारत प्रदान कर सकता है- नैतिक, टिकाऊ और उच्च-प्रदर्शन वाले प्राकृतिक फाइबर।

साल 2026-31 के लिए 5,664 करोड़ रुपये के कुल निवेश वाले 'मिशन फॉर कॉटन प्रोडक्टिविटी' में न्यू एज फाइबर्स के वास्ते 300 करोड़ रुपये का विशेष प्रावधान रखा गया है। इस प्रयास को और सशक्त बनाते हुए केंद्रीय बजट 2026-27 में घोषित राष्ट्रीय फाइबर मिशन के तहत एक व्यापक रणनीतिक ढांचा विकसित किया गया है। यह चार प्रमुख स्तंभों पर आधारित है- खेती व कच्चे माल के विकास के लिए कृषि-सूत्र, अनुसंधान व नवाचार के लिए-इन्फिनिटी, अवसंरचना व उद्यम सृजन के लिए ग्राम-सेतु और ब्रांडिंग व बाजार विकास के लिए जीएमपीएस।

नॉर्दर्न इंडिया टेक्सटाइल रिसर्च एसोसिएशन को 18 वर्षों के अनुसंधान के बाद एक बड़ी कामयाबी मिली है। अब इसका उपयोग रक्षा क्षेत्र में, विशेषकर 20 डिग्री सेल्सियस तापमान में तैनात सैनिकों के लिए स्लीपिंग बैग बनाने में किया जा रहा है। ये बैग पॉलिएस्टर विकल्पों की तुलना में 10 फीसदी हल्के, ऊन से अधिक गर्म और सीएलओ/सेल प्रमाणित हैं। 5.5 करोड़ हेक्टेयर बंजर भूमि पर बिना उर्वरक के उगाए जाने पर आक-मदार किसानों को प्रति एकड़ 1.5-2 लाख रुपये सालाना की आय प्रदान करने की क्षमता रखता है।

केला प्रतिवर्ष करीब 18 लाख टन फाइबर-उत्पादन की क्षमता रखता है, जबकि बांस प्रति हेक्टेयर 60 टन तक बायोमास उत्पादन करने की। भांग भी एक उभरता हुआ वैश्विक बाजार बन रहा है, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश में इसकी खेती की अनुमति है। फ्लैक्स, सिसल, रेगी, पीएएलएफ, बिछुआ या नेटल और कपोक जैसे फाइबरों के साथ मिलकर ये सभी भारत के टिकाऊ व प्राकृतिक फाइबर आधार का निरंतर विस्तार कर रहे हैं। भारत की वास्तविक शक्ति किसी एक फाइबर में नहीं, बल्कि उनको समझदारी से संयोजित करने में निहित है, जैसे थर्मल हल्केपन के लिए आक-मदार, गरमाहट के लिए ऊन, ब्रीदेबिलिटी के लिए बांस और कोमलता के लिए कपास।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के 5एफ विजन (फार्म, फाइबर, फैक्टरी, फैशन और फॉरेन) से प्रेरित भारत की ग्रीन फाइबर क्रांति कोई दूर का सपना नहीं है। रणनीति तय है, संस्थान सक्रिय हैं, विज्ञान प्रमाणित हो चुका है और उद्यमी तैयार हैं। आज भारत अपनी वस्त्र गाथा का महान अध्याय लिख रहा है।